महाभारत

व्यासगिरां निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे ।
भूषणतयैव संज्ञां यदङ्कितां भारती वहति ।।

(गोवर्धनाचार्य)

रामायण तथा महाभारत हमारे जातीय इतिहास हैं। भारतीय सभ्यता का भव्य रूप इन ग्रन्थों में जिस प्रकार फूट निकलता है वैसा अन्यत्र नहीं। कौरवों और पाण्डवों का इतिहास–वर्णन ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य नहीं है, अपितु हमारे हिन्दू-धर्म का विस्तृत एवं पूर्ण चित्रण भी प्रयोजन है। महाभारत का शान्तिपर्व जीवन की समस्याओं को सुलझाने का कार्य हजारों वर्षों से करता आ रहा है। इसलिए इस इतिहास ग्रन्थ को हम अपना धर्मग्रन्थ मानते आये हैं, जिसका पठन-पाठन, श्रवण-मनन, सब प्रकार से हमारा कल्याणकारक है। इस ग्रन्थ का सांस्कृतिक मूल्य भी कम नहीं है। सच तो यह है कि केवल इसी ग्रन्थ के अध्ययन से हम अपनी संस्कृति के शुद्ध स्वरूप से परिचय पा सकते हैं। भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'भगवद्गीता' इसी महाभारत का एक अंश है। इसके अतिरिक्त 'विष्णुसहस्रनाम', 'अनुगीता', 'भीष्मस्तवराज', 'गजेन्द्रमोक्ष' जैसे आध्यात्मिक तथा भक्तिपूर्ण ग्रन्थ इसी के अंश हैं। इन्हीं पाँच ग्रन्थों को 'पंचरत्न' के नाम से पुकारते हैं। इन्हीं गुणों के कारण महाभारत 'पंचम वेद' के नाम से विख्यातहै।

---

१. विशेष द्रष्टव्य डॉ० कामिल बुल्के की 'रामकथा' (द्वितीय सं०) इलाहाबाद, १९६२।

वाल्मीकि के समान व्यास भी संस्कृत कवियों के लिए उपजीव्य हैं। महाभारत के उपाख्यानों का अवलम्बन कर ही कालान्तर में हमारे कवियों ने काव्य, नाटक, गद्य, चम्पू, पद्य, कथा, आख्यायिका आदि नाना प्रकार के साहित्य की सृष्टि की है। इतना ही क्यों? जावा, सुमात्रा के साहित्य में भी महाभारत विद्यमान है। वहाँ के लोग भी महाभारत के कथानक से उसी प्रकार शिक्षा ग्रहण करते हैं तथा पाण्डव-चरित के अभिनय से उसी प्रकार मनोरंजन करते हैं जिस प्रकार भारतवासी। महाभारत इतना विशाल है कि व्यासजी का यह कथन सर्वथा उचित प्रतीत होता है—'इस ग्रन्थ में जो कुछ है वह अन्यत्र है, परन्तु जो कुछ इसमें नहीं है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।'[1] प्राचीन राजनीति को जानने के लिए हमें इसी ग्रन्थ की शरण लेनी पड़ती है। विदुरनीति, जिसमें आचार तथा लोक-व्यवहार के नियमों का सुन्दर निरूपण है, महाभारत का ही एक अंश है। इस प्रकार ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि अनेक दृष्टियों से महाभारत एक गौरवपूर्ण ग्रन्थ है।

रचयिता

महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास का सम्बन्ध महाभारत के पात्रों के साथ बहुत ही घनिष्ठ है। उनकी माता का नाम सत्यवती था, जो चेदिराज वसु उपरिचर के वीर्य से यमुना के किसी द्वीप में उत्पन्न हुई थी। मल्लाहों के राजा दासराज के द्वारा जन्मकाल से ही उनकी रक्षा तथा पोषण हुआ था। यमुना के किसी द्वीप में जन्म के कारण व्यास जी 'द्वैपायन' कहलाते थे, शरीर के रंग के कारण 'कृष्णमुनि' तथा यज्ञीय उपयोग के लिए एक को वेद चार संहिताओं में बिभाग करने के कारण 'वेदव्यास' के नाम से विख्यात थे। वे धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर के जन्मदाता ही नहीं थे, प्रत्युत पाण्डवों का विपत्ति के समय छाया के समान अनुगमन करनेवाले थे तथा अपने उपदेशों से उन्हें धैर्य, ढाढस तथा न्यायपथ पर आरूढ़ रहने की शिक्षा दिया करते थे। कौरवों को युद्ध से विरत करने के लिए इन्होंने कोई भी प्रयत्न उठा नहीं रखा, परन्तु विषय-भोग के पुतले इन कौरवों ने इनके उपदेशों को लात मारकर अपनी करनी का फल खूब ही पाया। इनसे बढ़कर भारतीय युद्ध के वर्णन करने का अधिकारी कोई दूसरा विद्वान् नहीं था। इन्होंने तीन वर्षों तक सतत परिश्रम से—सदा उत्थान से—इस अनुपम ग्रन्थ की रचना की (आदिपर्व—५६।५२) :—

त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमुत्तमम् ॥

ऐसे महनीय ग्रन्थ की तीन वर्षों के भीतर रचना का कार्य ग्रन्थकार की अनुपम काव्य-प्रतिभा तथा अदम्य उत्साह का पर्याप्त सूचक है।

आजकल महाभारत में एक लाख श्लोक मिलते हैं। इसलिए इसे 'शतसाहस्र-संहिता' कहते हैं। इसका यह स्वरूप कम से कम डेढ़ हजार वर्ष से पुराना अवश्य है, क्योंकि गुप्त-

---

१. धर्मे ह्यर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥ (महाभारत)

कालीन शिलालेख में यह 'शतसाहस्री संहिता' के नाम से उल्लिखित हुआ है। विद्वानों का कहना है कि महाभारत का वह रूप अनेक शताब्दियों में विकसित हुआ। बहुत प्राचीन काल से अनेक गाथाएँ तथा आख्यान इस देश में प्रचलित थे, जिनमें कौरवों तथा पाण्डवों की वीरता का वर्णन किया गया था। अथर्ववेद में परीक्षित का आख्यान उपलब्ध होता है। अन्यवैदिक ग्रन्थों में यत्र-तत्र महाभारत के वीर पुरुषों की बातें उल्लिखित मिलती हैं। इन्हीं सब गाथाओं तथा आख्यानों को एकत्र कर महर्षि वेदव्यास ने जिस काव्य का रूप दिया है वही आजकल का सुप्रसिद्ध महाभारत है। इसके विकास के तीन क्रमिक स्वरूप माने जाते हैं—(१) जय, (२) भारत, (३) महाभारत।

इस ग्रन्थ का मौलिक रूप **(१) 'जय'** नाम से प्रसिद्ध था। इस ग्रन्थ में नारायण[1], नर, सरस्वती देवी को नमस्कार कर जिस 'जय' नामक ग्रन्थ के पठन का विधान है वह 'महाभारत' का मूल प्रतीत होता है। वहीं स्वयं लिखा हुआ है कि इसका प्राचीन नाम जय था।[2] पाण्डवों के विजय-वर्णन के कारण ही इस ग्रन्थ का ऐसा नामकरण किया गया है।

(२) भारत—'जय के अनन्तर विकसित होने पर इस ग्रन्थ का अभिधान पड़ा—भारत। नाम से प्रतीत होता है कि यह भारतवंशी कौरवों तथा पाण्डवों के युद्ध का वर्णन परक ग्रन्थ था। उस समय उसका परिमाण केवल चौबीस सहस्र श्लोक था और यह आख्यानों से रहित था।[3] उपाख्यानों के समावेश ने इसे भारत से 'महाभारत' का रूप प्रदान किया, जो अपने "खिल पर्व' (अर्थात् परिशिष्ट रूप) 'हरिवंश' से संयुक्त होकर परिमाण में चतुर्गुण हो गया—एक लाख श्लोक वाला।

(३) महाभारत—लगभग पाँच सौ वर्ष ईस्वी पूर्व विरचित आश्वलायन गृह्यसूत्र में 'भारत' के साथ 'हमाभारत' का नाम निर्दिष्ट है। भारत के वर्तमान रूप में परिबृंहण का कार्य उपाख्यानों के जोड़ने से ही निष्पन्न हुआ है। इन उपाख्यानों में कुछ तो प्राचीन ऋषि तथा राजाओं के जीवन से सम्बद्ध होने के कारण घटना-प्रधान हैं,कतिपय ऐतिहासिक होने से प्राचीन इतिहास की अमूल्य निधि हैं, कतिपय तत्कालीन लोक-कथा के ही साहित्यिक संस्करण हैं और इस दृष्टि से इनकी तुलना जातकों के साथ की जा सकती है। अध्यात्म, धर्म तथा नीति की विशद विवेचना ने इस महाभारत को भारतीय धर्म तथा संस्कृति का विशाल 'विश्वकोष' बनाने में कुछ उठा नहीं रखा। डाक्टर सुखठणकर का प्रमाणपुष्ट मत है[4] कि भृगुवंशी ब्राह्मणों के द्वारा किये गये सम्पादनों का ही फल महाभारत का वर्तमान

---

१. नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥ (महाभारत—मंगल श्लोक)

२. 'जय' नामेतिहासोऽयम्।

३. चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः॥ (महाभारत)

४. भंडारकार रिसर्च इन्स्टीच्यूट की पत्रिका, भाग १८, पृ० १७६ तथा नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग ४५, पृ० १०५–१६२।

इनके अतिरिक्त महाभारत में अनेक रोचक तथा शिक्षाप्रद उपाख्यान भी हैं, जिनमें निम्नलिखित आख्यान विशेष प्रसिद्ध हैं--

(१) **शकुन्लोपाख्यान**—यह उपाख्यान महाभारत के आदिपर्व में है (अ० ७१), जिसमें दुष्यन्त और शकुन्तला की मनोहर कथा है। महाकवि कालिदास के 'शकुन्तला' नाटक का आधार यही आख्यान है।

(२) **मत्स्योपाख्यान**—यह वनपर्व में है। इसमें मत्स्यावतार की कथा है, जिसमें प्रलय उपस्थित होने पर मत्स्य के द्वारा मनु के बचाये जाने का विवरण है। यह कथा 'शतपथ ब्राह्मण' में भी उपलब्ध होती है तथा भारत से भिन्न देशों के इतिहास में भी इसका उल्लेख मिलता है।

(३) **रामोपाख्यान**—यह भी कथा वनपर्व के १८ अध्यायों में वर्णित है (अ० २७४–२९१)।

व्यासजी ने वाल्मीकीय रामायण के अनुसार ही यह उपाख्यान नहीं रचा, प्रत्युत रामायण के पद्यों का भी यहाँ बहुशः अनुकरण किया है। फलतः महाभारत राम की कथा से ही परिचय नहीं रखता, प्रत्युत वह वाल्मीकि-रचित रामायण को भी भली-भाँति जानता है और उसी का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करता है।

(४) **शिवि उपाख्यान**—यह सुप्रसिद्ध कथानक वन पर्व में ही है जिसमें उशीनर के राजा शिवि ने अपना प्राण देकर शरण में आये कपोत की रक्षा बाज से की थी (अ० १३०) यह कथा जातकों में भी आती है।

(५) **सावित्री उपाख्यान**—भारतीय ललनाओं के लिए आदर्शरूप सावित्री की कथा वनपर्व में मिलती है।महाराज द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् तथा सावित्री का उपाख्यान पातिव्रत धर्म की पराकाष्ठा है। ऐसी सुन्दर कथा शायद ही किसी अन्य साहित्य में प्राप्त हो (अ० २३९)।

(६) **नलोपाख्यान**—राजा नल और दमयन्ती की कमनीय कथा इसी पर्व में मिलती है (अ० ५२–७९)। श्रीहर्ष के 'नैषधचरित' महाकाव्य का यही आधार है।

हरिवंश

महाभारत के खिल पर्व होने के कारण हरिवंश की आलोचना अब प्रसंग प्राप्त है। हरिवंश में श्लोकों की संख्या सोलह हजार तीन सौ चौहत्तर (१६, ३७४ श्लोक) श्रीमद्-भागवत की श्लोक-संख्या से कुछ ही अधिक है। डॉ० विन्टरनित्स के कथनानुसार यूनानी कवि होमर के दोनों महाकाव्यों 'इलियड' और 'ओडिसी' की सम्मिलित पद्य संख्या से भी यह अधिक है, परन्तु यह एक लेखक की रचना न होकर अनेक लेखकों के संयुक्त प्रयास का फल है। हरिवंश का अन्तिम पर्व (ग्रन्थ का तृतीय भाग) तो परिशिष्ट भूत हरिवंश का भी परिशिष्ट है और काल क्रम से सबसे पीछे का निर्मित भाग है।

हरिवंश में तीन पर्व या खण्ड हैं—

(क) **हरिवंश पर्व**—इसमें हरि (कृष्ण) के वंश वृष्णि-अन्धक की कथा विस्तार से दी गई है और इस आदिम पर्व के आधार पर पूरे ग्रन्थ का नामकरण किया गया है। आरम्भ में सृष्टि का वर्णन है। ध्रुव के वर्णन के अनन्तर राजा पृथु की कथा विस्तार से दी गई है।

सूर्यवंशीय राजाओं के प्रसंग में विश्वामित्र तथा वसिष्ठ का भी आख्यान वर्णित है। प्रसंग से पृथक् हटकर प्रेतकल्प (अन्त्येष्टि एवं श्राद्ध) का वर्णन नौ अध्यायों में (अ० १६–२४) विस्तार से निबद्ध है और इसीके अन्तर्गत २१ वें अध्याय में पशुओं की बोली को समझने-बूझने वाले ब्रह्मदत्त की कथा दी गई है। चन्द्रवंशीय राजाओं के वर्णन के अवसर पर राजा पुरुरवा और उर्वशी का प्रख्यात वैदिक आख्यान प्राचीन शैली तथा भाषा में निबद्ध होकर शतपथ ब्राह्मण के इस आख्यान से समानता रखता है (अ० २६)। नहुष, ययाति तथा यदु के वर्णन के पश्चात् विष्णु की अनेक स्तुतियाँ प्रस्तुत की गई हैं, जो एक प्रकार से कृष्ण के पूर्व दैवी इतिहास का परिचय देती हैं।

(ख) विष्णुपर्व—यह समग्र ग्रन्थ का अतिशय विस्तृत तथा महनीय भाग है। इसमें कृष्णचन्द्र की विविध लीलाओं का, विशेषतः बाललीलाओं का, बड़ा ही साङ्गोपाङ्ग रुचिर विवरण है। श्रीमद्भागवत के वर्णन से तुलना करने पर अनेक स्थल पर पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है। कहीं-कहीं अन्य घटनायें भी दी गई हैं। कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के जन्म, शंबर द्वारा हरण, समुद्र से प्राप्ति तथा मायावती के साथ विवाह आदि प्रख्यात कथाओं का यहाँ उल्लेख है, परन्तु असुरों के राजा वज्रनाभ की दुहिता प्रभावती के साथ प्रद्युम्न का विवाह और वह भी नितान्त नाटकीय ढंग से एकदम नूतन तथा पर्याप्तरूपेण रोचक है (१५० अ०)। इसी प्रकार प्रख्यात रासलीला का हल्लीसक नृत्य के रूप में निर्देश किसी प्राचीन युग की स्मृति दिलाता है। इस पर्व के अन्त में अनिरुद्ध का विवाह बाणासुर की कन्या उषा के साथ बड़े उमंग और उत्साह से वर्णित है और इससे पूर्व 'हरि-हरात्मक स्तव' (अ० १८४) द्वारा शिव और विष्णु की एक ही अभिन्न देवता के रूप में सुन्दर स्तुति की गई है। इस पर्व में विषय की एकता और वर्णन की संगति से प्रतीत होता है कि प्राचीन युग में 'श्रीकृष्ण चरित काव्य' के साथ यह अंश सम्बन्ध रखता है, परन्तु तृतीय भाग के विषय में किसी एकता की कल्पना नहीं की जा सकती।

(ग) भविष्यपर्व—यह भाग विविध वृत्तों का पौराणिक शैली में परस्पर असम्बद्ध संकलन है। इस पर्व का नामकरण प्रथम अध्याय के नाम पर है, जहाँ भविष्य में होने वाली घटनाओं का संकेत किया गया है। जनमेजय द्वारा विहित यज्ञों का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है (अ० १९१–१९६)। विष्णु के सूकर, नृसिंह तथा वामन अवतारों के वर्णन के अनन्तर-शिवपूजा तथा विष्णु पूजा के समन्वय की दिशा दिखाई गई है। शिव के दो उपासक हंस तथा डिम्भक की कथा विस्तार से है, जिन्हें कृष्ण ने पराजित किया था। महाभारत के माहात्म्य वर्णन के पश्चात् समग्र हरिवंश का ध्येय हरि की स्तुति में प्रदर्शित किया गया है--आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते।

हरिवंश का स्वरूप

एक ओर हरिवंश महाभारत का परिशिष्ट (खिल) माना जाता है और दूसरी ओर यह पुराण नाम से भी अभिहित होता है। इस प्रकार के विरोध की मीमांसा आवश्यक है। हरिवंश महाभारत से साक्षात् सम्बन्ध रखता है। इसके पोषक प्रमाणों की कमी नहीं है--

(१) महाभारत के आरम्भ में ग्रन्थ के समग्र पर्वों की संख्या एक सौ परिगणित है (आदि पर्व, अ० २) और इसके भीतर हरिवंश भी सम्मिलित किया गया है (आदि

२।८२–८३)। ध्यान देने की बात तो यह है कि हरिवंश खिलसंज्ञित पुराण कहा गया है (हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम्)। फलतः व्यास की दृष्टि में खिल और पुराण दोनों साथ-साथ होने में कोई वषम्य नहीं है।

(२) हरिवंश के २० वें अध्याय में 'यथा ते कथितं पूर्वं मया राजर्षिसत्तम' के द्वारा ययाति के चरित की महाभारत में पूर्व स्थिति का स्पष्ट निर्देश है (आदिपर्व अ० ८१–८८)।

(३) हरिवंश के ३२ वें 'अध्याय में अदृश्यवाणी का कथन 'त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला' के द्वारा महाभारत में शकुन्तलोपाख्यान की ओर स्पष्ट संकेत है तथा ५४ अध्याय में कणिक मुनि का उल्लेख महाभारत में कणिक मुनि की पूर्व स्थिति बतलाता है (आदिपर्व अ०, १४०)।

(४) हरिवंश का उपक्रम तथा उपसंहार बतलाता है कि हरिवंश महाभारत का ही परस्पर सम्बद्ध खिल पर्व है। उपक्रमाध्याय में भारती कथा सुनने के बाद वृष्णि अन्धक चरित सुनने की इच्छा शौनक ने सौति से जो प्रकट की वह दोनों के सम सम्बन्ध का सूचक है। हरिवंश के १३२ वें अ० में महाभारत के कथाश्रवण का फल है, जिस कथन की संगति हरिवंश के महाभारत के अन्तर्गत मानने पर ही बैठ सकती है, अन्यथा नहीं।

(५) बहिरंग प्रमाणों में आनन्दवर्धन का यह कथन साक्ष्य प्रस्तुत करता है कि महाभारत के अन्त में हरिवंश के वर्णन से समाप्ति करनेवाले व्यासजी ने शान्तरस को ही ग्रन्थ का मुख्य रस व्यञ्जना के द्वारा अभिव्यक्त किया है।[1]

फलतः हरिवंश महाभारत का 'खिल' पर्व है। साथ ही साथ पञ्चलक्षण से समन्वित होने से यह 'पुराण' नाम्ना भी अभिहित किया जाता है, परन्तु न तो यह महापुराणों में अन्तर्भूत होता है और न उपपुराणों में। दोनों से इसकी विशिष्टता पृथक् ही है।

हरिवंश का कालनिर्णय

हरिवंश के निर्माण तथा महाभारत के साथ सम्बद्ध होने के काल का निर्णय प्रमाणों द्वारा किया जा सकता है—

(क) हरिवंश के साथ सम्मिलित होकर लक्ष श्लोकात्मक रूप धारण करने वाला महाभारत 'शत साहस्री संहिता' के नाम से ४५४ ईस्वी के गुप्त शिलालेख में उल्लिखित है।

(ख) अश्वघोष (प्रथमशती) ने अपने वज्रसूची उपनिषद् में हरिवंश के 'प्रेतकल्प' प्रकरण से 'सप्तव्याधा दशार्णेषु' (हरिवंश २४।२०, २१) इत्यादि श्लोकों को प्रमाण रूप से उद्धृत किया है। अतः हरिवंश की रचना प्रथमशती से अर्वाचीन नहीं हो सकती।

(ग) हरिवंश (विष्णु पर्व ५५।५०) में 'दीनार' का उल्लेख उसके रचनाकाल का द्योतक है। रोम साम्राज्य के सोने के सिक्के 'दिनारियस' कहलाते थे और उसी शब्द का

१. 'शान्तस्यैव रसस्याङ्गित्वं महाभारते च आमोक्षस्य च सर्वपुरुषार्थेभ्यः प्राधान्यम्'—। अयं च निगूढरमणीयोऽर्थो महाभारतावसाने हरिवंशवर्णनेन समाप्तिं विदधता तेनैव कविवेधसा कृष्णद्वैपायनेन सम्यक् स्फुटीकृतः। —ध्वन्यालोक, पृ० २३८–३९। नि० सा० संस्करण।

संस्कृत रूप 'दीनार' है। इस शब्द का सबसे प्राचीन प्रयोग प्रथमशती के शिलालेखों में उपलब्ध होता है।

(घ) हरिवंश के एक श्लोक में सुंगब्राह्मण राज्य के संस्थापक पुष्यमित्र द्वारा यज्ञ का उल्लेख भविष्य में होनेवाली घटना के रूप में निर्दिष्ट किया गया है--

उपात्तयज्ञो देवेसु ब्राह्मणेषूपपत्स्यते।
'औद्भिज्जो भविता कश्चित् सेनानीः काश्यपो द्विजः।
अश्वमेधं कलियुगे पुनः प्रत्याहरिष्यति॥
(हरिवंश ३।२।३९-४०)

यह तो प्रसिद्ध ही है कि ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र ने दो बार अश्वमेध यज्ञ किया था, जिनमें महाभाष्य के रचयिता पतञ्जलि स्वयं ऋत्विक् रूप से उपस्थित थे। 'इह पुष्यमित्रं याजयामः'--महाभाष्य। पुष्यमित्र ने लगभग ३६ वर्षों तक राज्य किया (लगभग ईस्वी पूर्व १८७-१५१) और आरम्भ में वे मौर्य सम्राट् के सेनापति थे। इसी प्रसिद्ध सेनानी का निर्देश इस श्लोक में है। फलतः हरिवंश का रचनाकाल इससे पूर्व नहीं, तो इसके कुछ ही पश्चात् होना चाहिए।

अतएव 'हरिवंश' का निर्माण काल ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी में मानना सर्वथा सुसंगत होगा।

हरिवंश का धार्मिक महत्त्व सर्वत्र प्रख्यात है। सन्तान के इच्छुक व्यक्तियों के लिये 'हरिवंश' के विधिवत् श्रवण का विधान लोक प्रचलित है। शपथ खाने के लिए पुरुषों के हाथ पर हरिवंश की पोथी रखने का प्रचलन नेपाल में उसी प्रकार है जिस प्रकार किसी मुसलमान के हाथ पर कुरान रखने का। श्रीकृष्ण के चरित के तुलनात्मक अध्ययन के लिए हरिवंश के विष्णुपर्व का परिशीलन नितान्त आवश्यक है। प्राचीन भारत की ललित कलाओं के विषय में हरिवंश बहुत ही उपादेय सामग्री प्रस्तुत करता है। प्राचीन भारत में नाटक के अभिनय-प्रकार की जानकारी के लिए यहाँ उपादेय तथ्यों का संकलन है। सबसे महत्त्वपूर्ण है हरिवंश में राजनैतिक इतिहास का वर्णन, जो किसी भी प्राचीन पुराण के वर्णन से उपादेयता और प्रामाणिकता में किसी प्रकार न्यून नहीं है[२]। फलतः प्रथम शती में भारतीय संस्कृति की रूपरेखा जानने के लिए हरिवंश[३] हमारा विश्वनीय मार्गदर्शक है।

---

१. 'औदभिज्ज' शब्द का अर्थ टीकाकार नीलकण्ठ ने 'भूमि से निकलने वाला योगी' किया है। आधुनिक विद्वान् इसे वनस्पति अर्थ में लेते हैं, जो काञ्ची के पल्लव तथा ववनवासी की कदम्ब जाति के समान किसी जाति या वंशविशेष का परिचायक प्रतीत होता है।

२. द्रष्टव्य डॉ० वीणापाणि पाण्डेय--हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन (हिन्दी समिति लखनऊ द्वारा प्रकाशित, १९६०।

३. हरिवंश का प्रकाशन नीलकण्ठ की टीका के साथ चित्रशाला प्रेस पूना ने तथा हिन्दी अनुवाद के साथ गीताप्रेस (गोरखपुर) ने किया है।